श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

पंच गीत

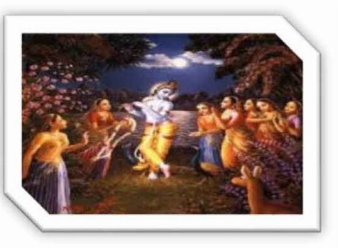

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।

देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

अन्तर्यामी नारायण स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उन लीलाओं का संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यास को नमस्कार करके जय के साधन वेद-पुराणों का पाठ करना चाहिये।

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।

प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

जिन भगवान के नामों का संकीर्तन सारे पापों को सर्वथा नष्ट कर देता है और जिन भगवान के चरणों में आत्मसमर्पण, उनके चरणों में प्रणति सर्वदा के लिए सब प्रकार के दुःखों को शांत कर देती है, उन्हीं परम -तत्वस्वरूप श्रीहरि को मैं नमस्कार करता हूं।

वेणु गीत(10.21)

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कन्धः

॥ अथैकविंशोऽध्यायः ॥

गोप्य ऊचुः

अक्षण्वतां(म्) फलमिदं(न्) न परं(वँ) विदामः(स्),

सख्यः(फ्) पशूननु विवेशयतोर्वयस्यैः ।

वक्त्रं(वँ) व्रजेशसुतयोरनुवेणु जुष्टं(यँ),

यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ॥ 1॥

अक्षण्+ वतां(म्), विवे+ शयतोर्+ वयस्यैः,

व्रजे+ शसुतयो+ रनुवेणु , निपी+ तमनुरक्त+ कटाक्षमोक्षम्

गोपियाँ आपस में बात चीत करने लगी- अरी सखी। हमने तो आँखोंवाले के जीवन की और उनकी आँखो की बस, यही इतनी ही सफलता समझी है; और तो हमें कुछ मालूम ही नहीं है। वह कौन-सा लाभ है ? वह यही है कि जब श्याम सुन्दर श्रीकृष्ण और गौरसुन्दर बलराम ग्वालबालों के साथ गायों को हाँक कर वन में ले जा रहे हों या लौटा कर जला रहे हों, उन्होंने अपने अधरों पर मुरली धर रखी हो और प्रेम भरी तिरछी चित वन से हमारी ओर देख रहे हों, उस समय हम उनकी मुख-माधुरी का पान करती रहीं।

चूतप्रवालबर्हस्तबकोत्पलाब्ज-

मालानुपृक्तपरिधानविचित्रवेषौ ।

मध्ये विरेजतुरलं(म्) पशुपालगोष्ठ्यां(म्),

रं(ङ्)गे यथा नटवरौ क्व च गायमानौ ॥ 2॥

चूत+ प्रवा+ लबर्हस् + तब+ कोत्+ पलाब्ज,

माला+ नुपृक्त+ परिधा+ नविचित्र+ वेषौ, पशुपा+लगोष्ठ्यां(म्)

अरी सखी जब वे आमकी नयी कोंपलें, मोरों के पंख, फूलों के गुच्छे, रंग-बिरंगे कमल और कुमुद की मालाएं धारण कर लेते हैं, श्रीकृष्ण के साँवरे शरीर पर पीताम्बर और बलराम के गोरे शरीर पर नीलाम्बर फहराने लगता है, तब उनका वेष बड़ा ही विचित्र बन जाता है। ग्वालबालों की गोष्ठीमें वे दोनों बीचो बीच बैठ जाते हैं और मधुर सङ्गीत को तान छेड़ देते हैं। मेरी प्यारी सखी! उस समय ऐसा जान पड़ता है मानो दो चतुर नट रंगमञ्च पर अभिनय कर रहे हों। मैं क्या बताऊँ कि उस समय उनकी कितनी शोभा होती है।

गोप्यः(ख्) किमाचरदयं(ङ्) कुशलं(म्) स्म वेणुर्-

दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम् ।

भुङ्क्ते स्वयं(यँ) यदवशिष्टरसं(म्) हृदिन्यो,

हृष्यत्त्वचोऽश्रुमुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्याः ॥ 3॥

किमा+ चरदयं(ङ्), दामोदरा+ धरसुधा+ मपि

यदव+ शिष्टरसं(म्), हृष्यत्+ त्वचोऽ+ श्रुमुमुचुस्+ तरवो

अरी गोपियो यह वेणु पुरुष जाति का होने पर भी पूर्वजन्म में न जाने ऐसा कौन-सा साधन-भजन कर चुका है कि हम गोपियों की अपनी सम्पत्ति दामोदर के अधरों की सुधा स्वयं ही इस प्रकार पिये जा

रहा है कि हम लोगों के लिये थोड़ा-सा भी रस शेष नहीं रहेगा। इस वेणु को अपने रस से सींचने वाली हृदिनियाँ आज कमलों के मिस रोमाञ्चित हो रही है और अपने वंश में भगवत्प्रेमी सन्तानो को देख कर श्रेष्ठ पुरुषों के समान वृक्ष भी इसके साथ अपना सम्बन्ध जोड़ कर आँखों से आनन्दाश्रु बहा रहे हैं।

वृन्दावनं(म्) सखि भुवो वितनोति कीर्तिं(यँ),
यद् देवकीसुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि ।
गोविन्दवेणुमनु मत्तमयूरनृत्यं(म्),
प्रेक्ष्याद्रिसान्वपरतान्यसमस्तसत्त्वम् ॥ 4॥

देवकी+ सुतपदाम्+ बुजलब्ध+ लक्ष्मि , मत्+ तमयू+ रनृत्यं(म्)
प्रेक्ष्या+ द्रिसान्+ वपरतान्+ यसमस्+ तसत्त्वम्

धन्याः(स्) स्म मूढमतयोऽपि हरिण्य एता,
या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेषम् ।
आकर्ण्य वेणुरणितं(म्) सहकृष्णसाराः(फ्),
पूजां(न्) दधुर्विरचितां(म्) प्रणयावलोकैः ॥ 5॥

मूढ+ मतयोऽपि, नन्दनन्द+ नमुपात्+ तविचित्रवेषम्
वेणु+ रणितं(म्), दधुर्+ विरचितां(म्), प्रणया+ वलोकैः

अरी सखी यह वृन्दावन वैकुण्ठ लोक तक पृथ्वी को कीर्ति का विस्तार कर रहा है। क्योंकि यशोदा नन्दन श्रीकृष्ण के चरण कमलों के चिह्नों से यह चिह्नित हो रहा है! सखि ! जब श्रीकृष्ण अपनी मुनिजन मोहिनी मुरली बजाते हैं, तब मोर मतवाले हो कर उसकी ताल पर नाचने लगते हैं। यह देख कर पर्वत की चोटियों पर विचर ने वाले सभी पशु-पक्षी चुप चाप शान्त हो कर खड़े रह जाते हैं। अरी सखी! जब प्राण वल्लभ श्रीकृष्ण विचित्र वेष धारण करके बाँसुरी बजाते हैं, तब मूढ़ बुद्धि वाली ये हरिनियाँ भी वंशी की तान सुन कर अपने पति कृष्ण सार मृगों के साथ नन्दनन्दन के पास चली आती हैं और अपनी प्रेमभरी बड़ी-बड़ी आँखो से उन्हें निरखने लगती हैं। निरखती क्या हैं, अपनी कमल के समान बड़ी-बड़ी आँखें श्रीकृष्ण के चरणों में निछावर कर देती है और श्रीकृष्ण की प्रेम भरी चितवन के द्वारा किया हुआ अपना सत्कार स्वीकार करती है। वास्तव में उनका जीवन धन्य है !

कृष्णं(न्) निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपशीलं(म्),
श्रुत्वा च तत्क्वणितवेणुविचित्रगीतम् ।
देव्यो विमानगतयः(स्) स्मरनुन्नसारा,

भ्रंश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनीव्यः ॥ 6॥

वनितोत्+ सवरू+ पशीलं(म्), तत्+ क्कणि+ तवे+ णुविचित्रगीतम्

विमा+ नगतयः(स्), स्मरनुन्+ नसारा , भ्रश्यत्+ प्रसू+ नकबरा ,मुमुहुर्+ विनीव्यः

अरी सखी। हरिनियों की तो बात ही क्या है- स्वर्ग की देवियाँ जब युवतियों को आनन्दित करने वाले सौन्दर्य और शील के खजाने श्रीकृष्ण को देखती हैं और बाँसुरी पर उनके द्वारा गाया हुआ मधुर संगीत सुनती हैं, तब उनके चित्र-विचित्र आलाप सुन कर वे अपने विमान पर ही सुध-बुध खो बैठती है मूर्च्छित हो जाती हैं। यह कैसे मालूम हुआ सखी? सुनो तो, जब उनके हृदय में श्रीकृष्ण से मिलने की तीव्र आकाङ्क्षा जग जाती है तब वे अपना धीरज खो बैठती हैं, बेहोश हो जाती हैं; उन्हें इस बात का भी पता नहीं चलता कि उनकी चोटियों में गुंथे हुए फूल पृथ्वी पर गिर रहे हैं। यहाँ तक कि उन्हें अपनी साड़ी का भी पता नहीं रहता, वह कमर से खिसक कर जमीन पर गिर जाती है।

गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीत-

पीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः(फ्) पिबन्त्यः ।

शावाः(स्) स्रुतस्तनपयः(ख्)कवलाः(स्) स्म तस्थुर्-

गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकलाः(स्) स्पृशन्त्यः ॥ 7॥

कृष्णमुख+ निर्गत+ वेणुगीत, पीयू+ षमुत्तभित+ कर्णपुटैः(फ्)

स्रुतस्+ तनपयः(ख्), गोविन्+ दमात्मनि , दृशा+ श्रुकलाः(स्)

अरी सखी! तुम देवियों की बात क्या कह रही हो, इन गौओंको नहीं देखती ? जब हमारे कृष्ण प्यारे अपने मुख से बाँसुरी में स्वर भरते हैं और गौएँ उनका मधुर संगीत सुनती हैं, तब ये अपने दोनों कानों के दोने सम्हाल लेती हैं-खड़े कर लेती हैं और मानो उनसे अमृत पी रही हों, इस प्रकार उस सङ्गीत का रस लेने लगती हैं? ऐसा क्यों होता है सखी? अपने नेत्रों के द्वार से श्यामसुन्दर को हृदय में ले जाकर वे उन्हें वहीं विराज मान कर देती हैं और मन-ही-मन उनका आलिङ्गन करती हैं। देखती नहीं हो, उनके नेत्रों से आनन्द के आंसू छलकने लगते हैं और उनके बछड़े, बछड़ों की तो दशा ही निराली हो जाती है। यद्यपि गायों के थनों से अपने-आप दूध झरता रहता है, वे जब दूध पीते-पीते अचानक ही वंशीध्वनि सुनते हैं, तब मुँह में लिया हुआ दूध का घूँट न उगल पाते हैं और न निगल पाते हैं। उनके हृदय में भी होता है भगवान् का संस्पर्श और नेत्रों में छलकते होते हैं आनन्द के आँसू वे ज्यों-के-त्यों ठिठ के रह जाते हैं।

प्रायो बताम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन्,

कृष्णेक्षितं(न्) तदुदितं(ङ्) कलवेणुगीतम् ।

आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान्,

शृण्वन्त्यमीलितदृशो विगतान्यवाचः ॥ 8॥

रुचिर+ प्रवालान् , शृण्वन्त्य+ मीलि+ तदृशो , विगतान्+ यवाचः

अरी सखी! गोएँ और बछड़े तो हमारी घर को वस्तु हैं। उनकी बात तो जाने ही दो वृन्दावन के पक्षियों को तुम नहीं देखती हो ! उन्हें पक्षी कहना ही भूल है। सच पूछो तो उनमें से अधिकांश बड़े-बड़े ऋषि-मुनि हैं। वे वृन्दावन के सुन्दर सुन्दर वृक्षों की नयी और मनोहर कोंपलों वाली डालियों पर चुपचाप बैठ जाते है और आँखें बंद नहीं करते, निर्निमेष नयनों से श्रीकृष्ण की रूप-माधुरी तथा प्यारभरी चितवन देख-देख कर निहाल होते रहते हैं, तथा कानों से अन्य सब प्रकार के शब्दों को छोड़ कर केवल उन्हींकी मोहनी वाणी और वंश का त्रिभुवन मोहन सङ्गीत सुनते रहते हैं। मेरी प्यारी सखी उनका जीवन कितना धन्य है।

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीत-

मावर्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः ।

आलिं(ङ्)गनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारेर्-

गृह्णन्ति पादयुगलं(ङ्) कमलोपहाराः ॥ 9॥

तदु+ पधार्य, मावर्+ तलक्षि+ तमनो+ भवभग्+ नवेगाः

आलिं(ङ्)गनस्+ थगितमूर्+ मिभुजैर्+ मुरारेर्, कमलो+ पहाराः

अरी सखी! देवता गौओ और पक्षियों की बात क्यों करती हो ? वे तो चेतन है। इन जड़ नदियों को नहीं देखती ? इनमें जो भँवर दीख रहे हैं, उनसे इनके हृदय में श्यामसुन्दर से मिलने की तीव्र आकांक्षा का पता चलता है? उसके वेग से ही तो इनका प्रवाह रुक गया है। इन्होंने भी प्रेम स्वरूप श्रीकृष्ण की सुन ली है। देखो देखो ये अपनी तरंगों के हाथों से उनके चरण पकड़ कर कमल के फूलों का उपहार चढ़ा रही हैं और उनका आलिङ्गन कर रही हैं, मानो उनके चरणों पर अपना हृदय ही निछावर कर रही है।

दृष्ट्वाऽऽतपे व्रजपशून् सह रामगोपैः(स्),

सं(ञ्)चारयन्तमनु वेणुमुदीरयन्तम् ।

प्रेमप्रवृद्ध उदितः(ख्) कुसुमावलीभिः(स्),

सख्युर्व्यधात् स्ववपुषाम्बुद आतपत्रम् ॥ 10॥

सं(ञ्)चा+ रयन्+ तमनु वेणुमुदी+ रयन्तम्

कुसुमा+ वलीभिः(स्), सख्युर्+ व्यधात् , स्व+ वपुषाम्+ बुद

अरी सखी! ये नदियाँ तो हमारी पृथ्वी को, हमारे वृन्दावन को वस्तुएँ हैं; तनिक इन बादलों को भी देखो। जब ये देखते है कि ब्रजराज कुमार श्रीकृष्ण और बलराम जी ग्वालबालों के साथ धूप में गौएँ चरा रहे हैं और साथ साथ बाँसुरी भी बजाते जा रहे हैं, तब उनके हृदय में प्रेम उमड़ आता है। वे उनके ऊपर मँडराने लगते हैं और वे श्यामघन अपने सखा घनश्याम के ऊपर अपने शरीर को ही छाता बनाकर तान देते हैं। इतना ही नहीं सखी! वे जब उन पर नन्हीं-नन्हीं फूहियों की वर्षा करने लगते है,

तब ऐसा जान पड़ता है कि वे उनके ऊपर सुन्दर-सुन्दर श्वेत कुसुम चढ़ा रहे हैं। नहीं सखी, उनके बहाने वे तो अपना जीवन ही निछावर कर देते हैं!

पूर्णाः(फ्) पुलिन्द्य उरुगायपदाब्जराग-

श्रीकुं(ङ्)कुमेन दयितास्तनमण्डितेन ।

तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन,

लिम्पन्त्य आननकुचेषु जहुस्तदाधिम् ॥ 11॥

उरुगा+ यपदाब्+ जराग, दयितास्+ तन+ मण्डितेन

तद्दर्शनस्+ मररुजस्+ तृणरूषितेन ,जहुस्+ तदाधिम्

अरो भट्ट ! हम तो वृन्दावन की इन भीलनियों को हो धन्य और कृतकृत्य मानती है। ऐसा क्यों सखी ? इसलिये कि इसके हृदय में बड़ा प्रेम है। जब ये हमारे कृष्ण-प्यारे को देखती हैं, तब | इनके हृदय में भी उनसे मिलने की तीव्र आकाङ्क्षा जाग उठती है। इनके हृदय में भी प्रेम की व्याधि लग जाती है। उस समय ये क्या उपाय करती हैं, यह भी सुन लो हमारे प्रिय तम की प्रेयसी गोपियाँ अपने वक्षःस्थलों पर जो केसर लगाती हैं, वह श्यामसुन्दर के चरणों में लगी होती है और वे जय वृन्दावन के घास-पात पर चलते हैं, तब उनमें भी लग जाती है। ये सौभाग्यवती भीलनियाँ उन्हें उन तिनको पर से छुड़ा कर अपने स्तनों और मुखों पर मल लेती हैं और इस प्रकार अपने हृदय की प्रेम-पीड़ा शान्त करती हैं।

हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो,

यद् रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः ।

मानं(न्) तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत्,

पानीयसूयवसकन्दरकन्दमूलैः ॥ 12॥

हन्ता+ यमद्रि+ रबला, रामकृष्णचरण+ स्पर्शप्रमोदः

सहगो+ गणयोस्+ तयोर्यत् , पानीयसू+ यवसकन्+ दरकन्+ दमूलैः

अरी गोपियो ! यह गिरिराज गोवर्द्धन तो भगवान् के भक्तोंमें बहुत ही श्रेष्ठ है। धन्य है इसके भाग्य ! देखती नहीं हो, हमारे प्राण वल्लभ श्रीकृष्ण और नयनाभिराम बलराम के चरण कमलो का स्पर्श प्राप्त करके यह कितना आनन्दित रहता है। इसके भाग्य की सराहना कौन करे ? यह तो उन दोनों का ग्वालबालो और गौओं का बड़ा ही सत्कार करता है। खान-पान के लिये झरनो का जल देता है, गौओं के लिये सुन्दर हरी-हरी घास प्रस्तुत करता है विश्राम करने के लिये कन्दराएँ और खाने के लिये कन्द-मूल फल देता है। वास्तव में यह धन्य है !

गा गोपकैरनुवनं(न्) नयतोरुदार-

वेणुस्वनैः(ख्) कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः ।

अस्पन्दनं(ङ्) गतिमतां(म्) पुलकस्तरूणां(न्),

निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम् ॥ 13॥

गोपकै+ रनुवनं(न्),कल+ पदैस्+ तनुभृत्सु

पुलकस्+ तरूणां(न्), निर्यो+ गपाशकृतल+ क्षणयोर् + विचित्रम्

अरी सखी! इन साँवरे गोरे किशोरों की तो गति ही निराली है। जब वे सिर पर नोवना लपेट कर और कंधों पर फंदा रख कर गायों को एक वन से दूसरे वन में कर ले जाते हैं. साथ मे ग्वालबाल भी होते हैं और मधुर-मधुर संगीत गाते हुए बाँसुरी को तान छेड़ते हैं, उस समय मनुष्यों की तो बात ही क्या, अन्य शरीर धारियों में भी चलने वाले चेतन पशु-पक्षी और जड़ नदीआदि तो स्थिर हो जाते हैं तथा अचल-वृक्षों को भी रोमाञ्च हो आता है। जादूभरी वंशी का और क्या चमत्कार सुनाऊँ?

प्रणय गीत 10.29 श्लोक 31-41

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कन्धः

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

गोप्य ऊचुः

मैवं(वँ) विभोऽर्हति भवान् गदितुं(न्) नृशं(म्)सं(म्),

सन्त्यज्य सर्वविषयां(म्)स्तव पादमूलम् ।

भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान्

देवो यथाऽऽदिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥ 1॥

सन् + त्यज्य

गोपियोंने कहा- प्यारे श्रीकृष्ण तुम घट-घट व्यापी हो। हमारे हृदयकी बात जानते हो। तुम्हें इस प्रकार निष्ठुरताभरे वचन नहीं कहने चाहिये। हम सब कुछ छोड़कर केवल तुम्हारे चरणोंमें ही प्रेम करती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि तुम स्वतन्त्र और हठीले हो। तुमपर हमारा कोई वश नहीं है। फिर भी तुम अपनी ओरसे, जैसे आदिपुरुष भगवान् नारायण कृपा करके अपने मुमुक्षु भक्तोंसे प्रेम करते हैं, वैसे ही हमें स्वीकार कर लो। हमारा त्याग मत करो

यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग

स्त्रीणां(म्) स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम् ।

अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे

प्रेष्ठो भवां(म्)स्तनुभृतां(ङ्) किल बन्धुरात्मा ॥ 2॥

यत्पत्+यपत्य+सुहृदा+मनुवृत्तिरङ्ग, अस्त्वे+ वमे+तदुपदे+शपदे, भवां(म्)स्+ तनुभृतां(ङ्)

प्यारे श्यामसुन्दर । तुम सब धर्मोका रहस्य जानते हो। तुम्हारा यह कहना कि 'अपने पति, पुत्र और भाई-बन्धुओंकी सेवा करना ही स्त्रियोंका स्वधर्म है अक्षरशः ठीक है। परन्तु इस उपदेशके अनुसार हमें तुम्हारी ही सेवा करनी चाहिये; क्योंकि तुम्हीं सब उपदेशोंके पद (चरम लक्ष्य) हो; साक्षात् भगवान् हो। तुम्हीं समस्त शरीरधारियोंके सुहृद् हो, आत्मा हो और परम प्रियतम हो ।

कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं(ङ्) कुशलाः(स्) स्व आत्मन्

नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैः(ख्) किम् ।

तन्नः(फ्) प्रसीद परमेश्वर मा स्म छिन्द्या

आशां(म्) भृतां(न्) त्वयि चिरादरविन्दनेत्र ॥ 3॥

पतिसुता+ दिभिरार्+ तिदैः(ख्),

आत्मज्ञानमे निपुण महापुरुष तुमसे ही प्रेम करते हैं; क्योंकि तुम नित्य प्रिय एवं अपने ही आत्मा हो। अनित्य एवं दुखद पति-पुत्रादिसे क्या प्रयोजन है ? परमेश्वर इसलिये हमपर प्रसन्न होओ। कृपा करो। कमलनयन ! चिरकालसे तुम्हारे प्रति पाली-पोसी आशा अभिलाषाकी लहलहाती लताका छेदन मत करो

चित्तं(म्) सुखेन भवतापहृतं(ङ्) गृहेषु

यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये ।

पादौ पदं(न्) न चलतस्तव पादमूलाद्-

यामः(ख्) कथं(वँ) व्रजमथो करवाम किं(वँ) वा ॥ 4॥

यन् + निर् + विशत्युत

मनमोहन ! अबतक हमारा चित्त घरके काम-धंधो लगता था। इसीसे हमारे हाथ भी उनमें रमे हुए थे। परन्तु तुमने हमारे देखते-देखते हमारा वह चित लूट लिया। इसमें तुम्हें कोई कठिनाई भी नहीं उठानी पड़ी, तुम तो सुखस्वरूप हो न ! परन्तु | अब तो हमारी गति-मति निराली ही हो गयी है। हमारे ये पैर तुम्हारे चरणकमलोंको छोड़कर एक पग भी हटनेके लिये तैयार नहीं है, नहीं हट रहे हैं। फिर हम व्रजमें कैसे जाये ? और यदि वहाँ जाये भी तो करें क्या ?

सिञ्चाङ्ग नस्त्वदधरामृतपूरकेण

हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम् ।

नो चेद् वयं(वँ) विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा

ध्यानेन याम पदयोः(फ्) पदवीं(म्) सखे ते ॥ 5॥

नस् + त्वदधरा+मृतपू+ रकेण,

हासावलो+ककलगी+ तजहृच् + छयाग्निम्, विरहजाग् + न्युप+युक्तदेहा

प्राणवल्लभ । हमारे प्यारे सखा तुम्हारी मन्द मन्द मधुर मुस्कान, प्रेमभरी चितवन और मनोहर संगीतने हमारे हृदयमें तुम्हारे प्रेम और मिलनकी आग धधका दी है। उसे तुम अपने अधरोंकी रसधारासे बुझा दो। नहीं तो प्रियतम हम सच कहती है, तुम्हारी विरह व्यथाकी आगसे हम अपने-अपने शरीर जला देगी और ध्यानके द्वारा तुम्हारे चरणकमलोंको प्राप्त करेंगी

यर्ह्यम्बुजाक्ष तव पादतलं(म्) रमाया

दत्तक्षणं(ङ्) क्वचिदरण्यजनप्रियस्य ।

अस्प्राक्ष्म तत्प्रभृति नान्यसमक्षमङ्ग

स्थातुं(न्) त्वयाभिरमिता बत पारयामः ॥ 6॥

यर्+ ह्यम् + बुजाक्ष, क्वचिदरण् + यजनप्रियस्य, अस् + प्राक्ष्म, नान् + यसमक्ष+ मङ्ग

प्यारे कमलनयन ! तुम वनवासियोंके प्यारे हो और वे भी तुमसे बहुत प्रेम करते हैं। इससे प्रायः तुम उन्हींके पास रहते हो। यहाँतक कि तुम्हारे जिन चरणकमलोंकी सेवाका अवसर स्वयं लक्ष्मीजीको कभी-कभी ही मिलता है, उन्हीं चरणोंका स्पर्श हमें प्राप्त हुआ। जिस दिन यह सौभाग्य हमें मिला और तुमने हमें स्वीकार करके आनन्दित किया, उसी दिनसे हम और किसीके सामने एक क्षणके लिये भी ठहरनेमें असमर्थ हो गयी हैं- पति पुत्रादिकोंकी सेवा तो दूर रही

श्रीर्यत्पदाम्बुजरजश्चकमे तुलस्या

लब्ध्वापि वक्षसि पदं(ङ्) किल भृत्यजुष्टम् ।

यस्याः(स्) स्ववीक्षणकृतेऽन्यसुरप्रयासस्-

तद्वद् वयं(ञ्) च तव पादरजः(फ्) प्रपन्नाः ॥ 7॥

श्रीर्यत् + पदाम् + बुजरजश् + चकमे, स्ववी+ क्षणकृतेऽन् + यसुरप्रयासस्

हमारे स्वामी ! जिन लक्ष्मीजीका कृपाकटाक्ष प्राप्त करनेके लिये बड़े-बड़े देवता तपस्या करते रहते हैं, वही लक्ष्मीजी तुम्हारे वक्षःस्थलमें बिना किसीकी प्रतिद्वन्द्विताके स्थान प्राप्त कर लेनेपर भी अपनी सौत तुलसीके साथ तुम्हारे चरणोंकी रज पानेकी अभिलाषा किया करती हैं। अबतकके सभी भक्तोंने उस चरणरजका सेवन किया है। उन्होंके समान हम भी तुम्हारी उसी चरणरजकी शरण में आयी हैं

तन्नः(फ्) प्रसीद वृजिनार्दन तेऽङ्घ्रिमूलं(म्),

प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः ।

त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षणतीव्रकाम-

तप्तात्मनां(म्) पुरुषभूषण देहि दास्यम् ॥ 8॥

वसतीस्+ त्वदुपा+ सनाशाः, त्वत्+ सुन्दरस्+ मितनिरी+ क्षणतीव्र+ काम

भगवन्! अबतक जिसने भी तुम्हारे चरणोंकी शरण ली, उसके सारे कष्ट तुमने मिटा दिये। अब तुम हमपर कृपा करो। हमें भी अपने प्रसादका भाजन बनाओ। हम तुम्हारी सेवा करनेकी आशा-अभिलाषासे घर, गाँव, कुटुम्ब - सब कुछ छोड़कर तुम्हारे युगल चरणोंकी शरणमें आयी हैं। प्रियतम

वहाँ तो तुम्हारी आराधनाके लिये अवकाश ही नहीं है। पुरुषभूषण! पुरुषोत्तम! तुम्हारी मधुर मुसकान और चारु चितवनने हमारे हृदयमें प्रेमकी मिलनकी आकाङ्क्षाकी आग धधका दी है; हमारा रोम-रोम उससे जल रहा है। तुम हमें अपनी दासीके रूपमें स्वीकार कर लो। हमें अपनी सेवाका अवसर दो

वीक्ष्यालकावृतमुखं(न्) तव कुण्डलश्री-

गण्डस्थलाधरसुधं(म्) हसितावलोकम् ।

दत्ताभयं(ञ्) च भुजदण्डयुगं(वँ) विलोक्य,

वक्षः(श्)श्रियैकरमणं(ञ्) च भवाम दास्यः ॥ 9॥

वीक्ष्या+ लका+ वृतमुखं(न्), गण्डस्+ थला+ धरसुधं(म्), वक्षः(श्)+ श्रियै+ करमणं(ञ्)

प्रियतम ! तुम्हारा सुन्दर मुखकमल, जिसपर घुँघराली अलके झलक रही हैं; तुम्हारे ये कमनीय कपोल, जिनपर सुन्दर-सुन्दर कुण्डल अपना अनन्त सौन्दर्यबिखेर रहे हैं; तुम्हारे ये मधुर अधर, जिनकी सुधा सुधाको भी जानेवाली है, तुम्हारी यह नयनमनोहारी चितवन, जो मन्द मन्द मुसकानसे उल्लसित हो रही है; तुम्हारी ये दोनों भुजाएँ, जो शरणागतोंको अभयदान देनेमें अत्यन्त उदार हैं और तुम्हारा यह वक्षःस्थल, जो लक्ष्मीजीका सौन्दर्यकी एकमात्र देवीका नित्य क्रीडास्थल है, देखकर हम सब तुम्हारी दासी हो गयी है

का स्त्र्यङ्ग ते कलपदायतमूर्च्छितेन,

सम्मोहिताऽऽर्यचरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम् ।

त्रैलोक्यसौभगमिदं(ञ्) च निरीक्ष्य रूपं(यँ),

यद् गोद्विजद्रुममृगाः(फ्) पुलकान्यबिभ्रन् ॥ 10॥

कलपदा+ यतमूर्च् + छितेन ,सम्मोहिताऽऽर्+ यचरितान्+ न ,त्रैलोक्यसौ+ भगमिदं(ञ्)

गोद्विज+ द्रुम+ मृगाः(फ्) ,पुलकान्+ यबिभ्रन्

प्यारे श्यामसुन्दर ! तीनों लोकोंमें भी और ऐसी कौन-सी स्त्री है, जो मधुर-मधुर पद और आरोह-अवरोह-क्रमसे विविध प्रकारकी मूर्च्छनाओंसे युक्त तुम्हारी वंशीकी तान सुनकर तथा इस त्रिलोकसुन्दर मोहिनी मूर्तिको जो अपने एक बूँद सैन्दर्य त्रिलोकीको सौन्दर्यका दान करती है एवं जिसे देखकर गौ, पक्षी, वृक्ष और हरिन भी रोमाशित, पुलकित हो जाते हैं— अपने नेत्रोंसे निहारकर आर्य-मर्यादासे विचलित न हो जाय, कुल-कान और लोकलजाको त्यागकर तुममें अनुरक्त न हो जाय

व्यक्तं(म्) भवान् व्रजभयार्तिहरोऽभिजातो,

देवो यथाऽऽदिपुरुषः(स्) सुरलोकगोप्ता ।

तन्नो निधेहि करपं(ङ्)कजमार्तबन्धो,

तप्तस्तनेषु च शिरस्सु च किं(ङ्)करीणाम् ॥ 11॥

व्रजभयार्+ तिहरोऽ+ भिजातो ,करपं(ङ्)कज+ मार्तबन्धो

हमसे यह बात छिपी नहीं है कि जैसे भगवान् नारायण देवताओंकी रक्षा करते हैं, वैसे ही तुम व्रजमण्डलका भय और दुःख मिटानेके लिये ही प्रकट हुए हो और यह भी स्पष्ट ही है कि दीन-दुखियोंपर तुम्हारा बड़ा प्रेम, बड़ी कृपा है। प्रियतम! हम भी बड़ी दुःखिनी हैं। तुम्हारे मिलनकी आकांक्षाकी आगसे हमारा वक्षःस्थल जल रहा है। तुम अपनी इन दासियोंके वक्षःस्थल और सिरपर अपने कोमल करकमल रखकर इन्हें अपना लो; हमें जीवनदान दो

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायां(न्)

दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भगवतो रासक्रीडावर्णनं(न्) नामैकोनत्रिं(म्)शोऽध्यायः ॥

गोपी गीत(10.31)

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कन्धः

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

गोप्य ऊचुः

जयति तेऽधिकं(ञ्) जन्मना व्रजः(श्),

श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।

दयित दृश्यतां(न्) दिक्षु तावकास्-

त्वयि धृतासवस्त्वां(वँ) विचिन्वते ॥ 1॥

धृता+ सवस्+ त्वां(वँ)

गोपियाँ विरहावेश में गाने लगीं- 'प्यारे! तुम्हारे जन्म के कारण वैकुण्ठ आदि लोकों से भी व्रज की महिमा बढ़ गयी है। तभी तो सौन्दर्य और मृदुलता की देवी लक्ष्मीजी अपना निवासस्थान वैकुण्ठ छोड़कर यहाँ नित्य-निरन्तर निवास करने लगी हैं, इसकी सेवा करने लगी हैं। परन्तु प्रियतम ! देखो तुम्हारी गोपियाँ जिन्होंने तुम्हारे चरणों में ही अपने प्राण समर्पित कर रखे हैं, वन-वन में भटककर तुम्हें ढूँढ़ रही हैं

शरदुदाशये साधुजातसत्,

सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा ।

सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका,

वरद निघ्नतो नेह किं(वँ) वधः ॥ 2॥

सरसि+ जोदर+ श्रीमुषा

हमारे प्रेमपूर्ण हृदय के स्वामी! हम तुम्हारी बिना मोल की दासी हैं। तुम शरत् कालीन जलाशय में सुन्दर-से-सुन्दर सरसिज की कर्णिका के सौन्दर्य को चुरानेवाले नेत्रों से हमें घायल कर चुके हो। हमारे मनोरथ पूर्ण करनेवाले प्राणेश्वर! क्या नेत्रों से मारना वध नहीं है? अस्त्रों से हत्या करना ही वध है?

विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद्,

वर्षमारुताद् वैद्युतानलात् ।

वृषमयात्मजाद् विश्वतोभया-

दृषभ ते वयं(म्) रक्षिता मुहुः ॥ 3॥

विष+ जलाप्ययाद् , व्याल+ राक्षसाद् , वर्ष+ मारुताद् , वैद्युता+ नलात् ,वृष+ मयात्मजाद्

पुरुषशिरोमणे! यमुनाजी के विषैले जल से होनेवाली मृत्यु, अजगर के रूप में खानेवाले अघासुर, इन्द्र की वर्षा, आँधी, बिजली, दावानल, वृषभासुर और व्योमासुर आदि से एवं भिन्न-भिन्न अवसरों पर सब प्रकार के भयोंसे तुमने बार-बार हमलोगों की रक्षा की है

न खलु गोपिकानन्दनो भवा-

नखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ।

विखनसार्थितो विश्वगुप्तये,

सख उदेयिवान् सात्वतां(ङ्) कुले ॥ 4॥

नखिल+ देहिना+ मन्त+ रात्मदृक्, विखन+ सार्थितो

तुम केवल यशोदानन्दन ही नहीं हो; समस्त शरीरधारियों के हृदय में रहनेवाले उनके साक्षी हो, अन्तर्यामी हो। सखे! ब्रह्माजी की प्रार्थना से विश्व की रक्षा करने के लिये तुम यदुवंश में अवतीर्ण हुए हो

विरचिताभयं(वँ) वृष्णिधुर्य ते,

चरणमीयुषां(म्) सं(म्)सृतेर्भयात् ।

करसरोरुहं(ङ्) कान्त कामदं(म्),

शिरसि धेहि नः(श्) श्रीकरग्रहम् ॥ 5॥

विरचिता + भयं, सं(म्)सृतेर् + भयात्

अपने प्रेमियों की अभिलाषा पूर्ण करनेवालों में अग्रगण्य यदुवंशशिरोमणे! जो लोग जन्म-मृत्युरूप संसार के चक्कर से डरकर तुम्हारे चरणों की शरण ग्रहण करते हैं, उन्हें तुम्हारे करकमल अपनी छत्र-छाया में लेकर अभय कर देते हैं। हमारे प्रियतम! सबकी लालसा- अभिलाषाओं को पूर्ण करनेवाला वही करकमल, जिससे तुमने लक्ष्मीजी का हाथ पकड़ा है, हमारे सिरपर रख दो

व्रजजनार्तिहन् वीर योषितां(न्),

निजजनस्मयध्वं(म्)सनस्मित ।

भज सखे भवꣳकिं(ङ्)करीः(स्) स्म नो,

जलरुहाननं(ञ्) चारु दर्शय ॥ 6॥

व्रज+ जनार् + तिहन् , निज+ जनस्मय+ ध्वं(म्)सनस्मित

व्रजवासियों के दुःख दूर करनेवाले वीरशिरोमणि श्यामसुन्दर ! तुम्हारी मन्द-मन्द मुसकान की एक उज्ज्वल रेखा ही तुम्हारे प्रेमीजनों के सारे मान-मद को चूर-चूर कर देनेके लिये पर्याप्त है। हमारे प्यारे सखा! हमसे रूठो मत, प्रेम करो। हम तो तुम्हारी दासी हैं, तुम्हारे चरणों पर निछावर हैं। हम अबलाओं को अपना वह परम सुन्दर साँवला-साँवला मुखकमल दिखलाओ

प्रणतदेहिनां(म्) पापकर्शनं(न्),

तृणचरानुगं(म्) श्रीनिकेतनम् ।

फणिफणार्पितं(न्) ते पदाम्बुजं(ङ्),

कृणु कुचेषु नः(ख्) कृंन्धि हृच्छयम् ॥ 7॥

प्रणत+ देहिनां(म्) , तृण+ चरानुगं(म्) , फणि+ फणार्पितं(न्)

तुम्हारे चरणकमल शरणागत प्राणियों के सारे पापों को नष्ट कर देते हैं। वे समस्त सौन्दर्य, माधुर्य की खान हैं और स्वयं लक्ष्मीजी उनकी सेवा करती रहती हैं। तुम उन्हीं चरणों से हमारे बछड़ों के पीछे-पीछे चलते हो और हमारे लिये उन्हें साँप के फणतक पर रखने में भी तुमने संकोच नहीं किया। हमारा हृदय तुम्हारी विरह व्यथा की आगसे जल रहा है तुम्हारी मिलन की आकांक्षा हमें सता रही है। तुम अपने वे ही चरण हमारे वक्षःस्थल पर रखकर हमारे हृदय की ज्वाला को शान्त कर दो

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया,

बुधमनोज्ञया पुंष्करेक्षण ।

विधिकरीरिमा वीर मुह्यती-

रधरसीधुनाऽऽप्याययंस्व नः ॥ 8॥

वल्गु+ वाक्यया , बुध+ मनोज्ञया , विधि+ करी+ रिमा , रधर+सीधुनाऽऽ+ प्याययस्व

कमलनयन! तुम्हारी वाणी कितनी मधुर है! उसका एक-एक पद, एक-एक शब्द, एक-एक अक्षर मधुरातिमधुर है। बड़े-बड़े विद्वान् उसमें रम जाते हैं। उसपर अपना सर्वस्व निछावर कर देते हैं। तुम्हारी उसी वाणी का रसास्वादन करके तुम्हारी आज्ञाकारिणी दासी गोपियाँ मोहित हो रही हैं। दानवीर! अब तुम अपना दिव्य अमृत से भी मधुर अधर-रस पिलाकर हमें जीवन-दान दो, छका दो

तव कथामृतं(न्) तप्तजीवनं(ङ्),

कविभिरीडितं(ङ्) कल्मषापहम् ।

श्रवणमङ्गलं(म्) श्रीमदाततं(म्),

भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥ 9॥

तप्त+ जीवनं(ङ्), कवि+ भिरीडितं(ङ्)

प्रभो! तुम्हारी लीलाकथा भी अमृतस्वरूप है। विरह से सताये हुए लोगों के लिये तो वह जीवन सर्वस्व ही है। बड़े-बड़े ज्ञानी महात्माओं—भक्त कवियों ने उसका गान किया है, वह सारे पाप-ताप तो मिटाती ही है, साथ ही श्रवण मात्र से परम मंगल - परम कल्याण का दान भी करती है। वह परम सुन्दर, परम मधुर और बहुत विस्तृत भी है। जो तुम्हारी उस लीला - कथा का गान करते हैं, वास्तव में भूलोक में वे ही सबसे बड़े दाता हैं

प्रहसितं(म्) प्रियं प्रेमवीक्षणं(वँ्),

विहरणं(ञ्) च ते ध्यानमङ्गलम् ।

रहसि सं(वँ्)विदो या हृदिस्पृशः(ख्),

कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि ॥ 10॥

प्रेम+ वीक्षणं(वँ्)

प्यारे! एक दिन वह था, जब तुम्हारी प्रेमभरी हँसी और चितवन तथा तुम्हारी तरह-तरह की क्रीडाओं का ध्यान करके हम आनन्द में मग्न हो जाया करती थीं। उनका ध्यान भी परम मंगलदायक है, उसके बाद तुम मिले। तुमने एकान्त में हृदयस्पर्शी ठिठोलियाँ कीं, प्रेम की बातें कहीं। हमारे कपटी मित्र ! अब वे सब बातें याद आकर हमारे मन को क्षुब्ध किये देती हैं

चलसि यद् व्रजाच्चारयन् पशून्,

नलिनसुन्दरं(न्) नाथ ते पदम् ।

शिलतृणां(ङ्)कुरैः(स्) सीदतीति नः(ख्),

कलिलतां(म्) मनः(ख्) कान्त गच्छति ॥ 11॥

व्रजाच् + चारयन् , शिल+ तृणां(ङ्)+ कुरैः(स्)

हमारे प्यारे स्वामी! तुम्हारे चरण कमल से भी सुकोमल और सुन्दर हैं। जब तुम गौओं को चराने के लिये व्रज से निकलते हो तब यह सोचकर कि तुम्हारे वे युगल चरण कंकड़, तिनके और कुश-काँटे गड़ जाने से कष्ट पाते होंगे, हमारा मन बेचैन हो जाता है। हमें बड़ा दुःख होता है

दिनपरिक्षये नीलकुन्तलैर्-

वनरुहाननं(म्) बिभ्रदावृतम् ।

घनरजस्वलं(न्) दर्शयन् मुहुर्-

मनसि नः(स्) स्मरं(वँ्) वीर यच्छसि ॥ 12॥

दिन+ परिक्षये , घन+रजस्+ वलं(न्)

दिन ढलने पर जब तुम वन से घर लौटते हो, तो हम देखती हैं कि तुम्हारे मुखकमल पर नीली-नीली अलकें लटक रही हैं और गौओं के खुर से उड़-उड़कर घनी धूल पड़ी हुई है। हमारे वीर प्रियतम! तुम अपना वह सौन्दर्य हमें दिखा दिखाकर हमारे हृदय में मिलन की आकांक्षा—प्रेम उत्पन्न करते हो

प्रणतकामदं(म्) पद्मजार्चितं(न्),
धरणिमण्डनं(न्) ध्येयमापदि ।
चरणपं(ङ्)कजं(म्) शन्तमं(ञ्) च ते,
रमण नः(स्) स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥ 13॥

पद्म+ जार्चितं(न्) , स्तनेष्+ वर्प+ याधिहन्

प्रियतम! एकमात्र तुम्हीं हमारे सारे दुःखों को मिटानेवाले हो। तुम्हारे चरणकमल शरणागत भक्तों की समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करनेवाले हैं। स्वयं लक्ष्मीजी उनकी सेवा करती हैं और पृथ्वी के तो वे भूषण ही हैं। आपत्ति के समय एकमात्र उन्हीं का चिन्तन करना उचित है, जिससे सारी आपत्तियाँ कट जाती हैं। कुंजविहारी! तुम अपने वे परम कल्याणस्वरूप चरणकमल हमारे वक्षःस्थल पर रखकर हृदय की व्यथा शान्त कर दो

सुरतवर्धनं(म्) शोकनाशनं(म्),
स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम् ।
इतररागविस्मारणं(न्) नृणां(वँ्),
वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥ 14॥

सुरत+ वर्धनं(म्), स्वरित+ वेणुना, इतर+ रागविस् + मारणं(न्) नस् + तेऽधरा+ मृतम्

वीरशिरोमणे! तुम्हारा अधरामृत मिलन के आकांक्षा को बढ़ानेवाला है। वह विरहजन्य समस्त शोक-सन्ताप को नष्ट कर देता है। सुख को— यह गानेवाली बाँसुरी भलीभाँति उसे चूमती रहती है। जिन्होंने एक बार उसे पी लिया, उन लोगों को फिर दूसरों और दूसरों की आसक्तियों का स्मरण भी नहीं होता। हमारे वीर! अपना वही अधरामृत हमें वितरण करो, पिलाओ

अटति यद् भवानह्नि काननं(न्),
त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ।
कुटिलकुन्तलं(म्) श्रीमुखं(ञ्) च ते,
जड उदीक्षतां(म्) पक्ष्मकृद् दृशाम् ॥ 15॥

त्रुटिर् + युगायते , त्वाम+ पश्यताम्

प्यारे ! दिन के समय जब तुम वन में विहार करने के लिये चले जाते हो, तब तुम्हें देखे बिना हमारे लिये एक- एक क्षण युग के समान हो जाता है और जब तुम सन्ध्या के समय लौटते हो तथा घुँघराली अलकों से युक्त तुम्हारा परम सुन्दर मुखारविन्द हम देखती हैं, उस समय पलकों का गिरना हमारे लिये भार हो जाता है और ऐसा जान पड़ता है कि इन नेत्रों की पलकों को बनानेवाला विधाता मूर्ख है

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवा-

नतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागताः ।

गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः(ख्),

कितव योषितः(ख्) कस्त्यजेन्निशि ॥ 16॥

पतिसुतान्वय+ भ्रातृबान्धवा, तेऽन् + त्यच् + युतागताः

गति+ विदस्तवोद्+ गीतमोहिताः(ख्) , कस्त्य+ जेन्+ निशि

प्यारे श्यामसुन्दर! हम अपने पति-पुत्र, भाई-बन्धु और कुल-परिवार का त्यागकर, उनकी इच्छा और आज्ञाओं का उल्लंघन करके तुम्हारे पास आयी हैं। हम तुम्हारी एक-एक चाल जानती हैं, संकेत समझती हैं और तुम्हारे मधुर गान की गति समझकर, उसीसे मोहित होकर यहाँ आयी हैं। कपटी! इस प्रकार रात्रि के समय आयी हुई युवतियों को तुम्हारे सिवा और कौन छोड़ सकता है

रहसि सं(वँ)विदं(म्) हृच्छयोदयं(म्),

प्रहसिताननं(म्) प्रेमवीक्षणम् ।

बृहदुरः(श्) श्रियो वीक्ष्य धाम ते,

मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः ॥ 17॥

हृच्छ+ योदयं(म्), मुहुरति+ स्पृहा

प्यारे ! एकान्त में तुम मिलन की आकांक्षा, प्रेम-भाव को जगानेवाली बातें करते थे। ठिठोली करके हमें छेड़ते थे। तुम प्रेमभरी चितवन से हमारी ओर देखकर मुसकरा देते थे और हम देखती थीं तुम्हारा वह विशाल वक्षःस्थल, जिसपर लक्ष्मीजी नित्य-निरन्तर निवास करती हैं। तबसे अबतक निरन्तर हमारी लालसा बढ़ती ही जा रही है और हमारा मन अधिकाधिक मुग्ध होता जा रहा है

व्रजवनौकसां(वँ) व्यक्तिरङ्ग ते,

वृजिनहन्त्र्यलं(वँ) विश्वमङ्गलम् ।

त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां(म्),

स्वजनहृद्रुजां(यँ) यन्निषूदनम् ॥ 18॥

व्रज+ वनौ+ कसां(वँ), वृजि+ नहन् + त्र्यलं(वँ)

नस् + त्वत् + स्पृहात् + मनां(म्) , यन् + निषूदनम्

प्यारे! तुम्हारी यह अभिव्यक्ति व्रज-वनवासियों के सम्पूर्ण दुःख-ताप को नष्ट करनेवाली और विश्व का पूर्ण मंगल करने के लिये है। हमारा हृदय तुम्हारे प्रति लालसा से भर रहा है। कुछ थोड़ी-सी ऐसी ओषधि दो, जो तुम्हारे निजजनों के हृदयरोग को सर्वथा निर्मूल कर दे

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं(म्) स्तनेषु,

भीताः(श्) शनैः(फ्) प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ।

तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित्,

कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां(न्) नः ॥ 19॥

सुजात+ चरणाम् + बुरुहं(म्), तेना+ टवी+ मटसि

कूर्पादि+ भिर् + भ्रमति, धीर् + भवदा+ युषां(न्)

तुम्हारे चरण कमल से भी सुकुमार हैं। उन्हें हम अपने कठोर स्तनोंपर भी डरते-डरते बहुत धीरेसे रखती हैं कि कहीं उन्हें चोट न लग जाय। उन्हीं चरणों से तुम रात्रि के समय घोर जंगल में छिपे-छिपे भटक रहे हो! क्या कंकड़, पत्थर आदि की चोट लगने से उनमें पीड़ा नहीं होती? हमें तो इसकी सम्भावना मात्र से ही चक्कर आ रहा है। हम अचेत होती जा रही हैं। श्रीकृष्ण! श्यामसुन्दर! प्राणनाथ! हमारा जीवन तुम्हारे लिये है, हम तुम्हारे लिये जी रही हैं, हम तुम्हारी हैं

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायां(न्)

दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडायां(ङ्) गोपीगीतं(न्) नामैकत्रिं(म्)शोऽध्यायः ॥

युगलगीत(10.35)

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कन्धः

॥ अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥

गोप्य ऊचुः

वामबाहुकृतवामकपोलो,

वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम् ।

कोमलाङ्गुलिभिराश्रितमार्गं(ङ्),

गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ॥ 1॥

वाम+ बाहुकृतवा+ मकपोलो ,वल्गित+ भ्रुरधरार्+ पितवेणुम् ,

कोमला(ङ्)+ गुलिभिरा+ श्रितमार्गं(ङ्)

व्योमयानवनिताः(स्) सह सिद्धैर्-

विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः ।

काममार्गणसमर्पितचित्ताः(ख्),

कश्मलं(यँ) ययुरपस्मृतनीव्यः ॥ 2॥

व्योमया+ नवनिताः(स्), विस्मितास्+ तदु+ पधार्य ,

काम+ मार्गण+ समर्पित+ चित्ताः(ख्), ययु+ रपस्+ मृतनीव्यः

गोपियाँ आपसमें कहतीं- अरी सखी! अपने प्रेमीजनोंको प्रेम वितरण करनेवाले और द्वेष करनेवालों तकको मोक्ष दे देनेवाले श्यामसुन्दर नटनागर जब अपने बायें कपोलको बायीं बाँहकी ओर लटका देते हैं और अपनी भौंहें नचाते हुए बाँसुरीको अधरोंसे लगाते हैं तथा अपनी सुकुमार अंगुलियोंको उसके छेदो पर फिराते हुए मधुर तान छेड़ते हैं, उस समय सिद्धपत्नियाँ आकाशमें अपने पति सिद्धगणोंके साथ विमानोंपर चढ़कर आ जाती हैं और उस तानको सुनकर अत्यन्त ही चकित तथा विस्मित हो जाती हैं। पहले तो उन्हें अपने पतियोंके साथ रहनेपर भी चित्तकी यह दशा देखकर लज्जा मालूम होती है; परन्तु क्षणभर में ही उनका चित्त कामबाणसे बिंध जाता है, वे विवश और अचेत हो जाती हैं। उन्हें इस बातकी भी सुध नहीं रहती कि उनकी नीवी खुल गयी है और उनके वस्त्र खिसक गये हैं ।

हन्त चित्रमबलाः(श्) शृणुतेदं(म्),

हारहास उरसि स्थिरविद्युत् ।

नन्दसूनुरयमार्तजनानां(न्),

नर्मदो यर्हि कूजितवेणुः ॥ 3॥

चित्र+ मबलाः(श्), नन्द+ सूनु+ रयमार्त+ जनानां(न्)

वृन्दशो व्रजवृषा मृगगावो,

वेणुवाद्यहृतचेतस आरात् ।

दन्तदष्टकवला धृतकर्णा,

निद्रिता लिखितचित्रमिवासन् ॥ 4॥

वेणु+ वाद्य+ हृतचेतस, दन्त+ दष्ट+ कवला, लिखित+ चित्र+ मिवासन्

हे गोपियो ! तुम यह आश्चर्यकी बात सुनो, ये जो नन्द का नन्दन है ना बहुत ही सुन्दर हैं। जब वे हँसते हैं तब हास्यरेखाएँ हारका रूप धारण कर लेती हैं, सफेद मोती-सी चमकने लगती है। और सुन उनके वक्षःस्थलपर लहराते हुए, हारमें हास्यकी किरणे चमकने लगती हैं। उनके वक्षःस्थलपर जो श्रीवत्सकी सुनहली रेखा है, वह तो ऐसी जान पड़ती है, मानो श्याम मेघपर बिजली ही स्थिररूपसे बैठ गयी है। वे जब दुःखीजनोंको सुख देनेके लिये विरहियोंके मृतक शरीरमें प्राणोंका सञ्चार करनेके लिये बाँसुरी बजाते हैं, तब के झुंड के झुंड बैल,गाय और हिरन उनके पास ही दौड़ आते हैं। केवल आते ही नहीं, सखी! दाँतोंसे चबाया हुआ घासका ग्रास उनके मुँहमें ज्यों-का-त्यों पड़ा रह जाता है, वे उसे न निगल पाते और न तो उगल ही पाते हैं। दोनों कान खड़े करके इस प्रकार स्थिरभावसे खड़े हो जाते हैं, मानो जेसे सो ही गये हो या केवल भीतपर लिखे हुए चित्र हैं। उनकी ऐसी दशा होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि यह बाँसुरीकी तान उनके चित्तको चुरा लेती है

बर्हिणस्तबकधातुपलाशैर्-

बद्धमल्लपरिबर्हविडम्बः ।

कर्हिचित् सबल आलि स गोपैर्-

गाः(स्) समाह्वयति यत्र मुकुन्दः ॥ 5॥

बर्हिणस्+ तबकधा+ तुपलाशैर् ,बद्ध+ मल्ल+ परिबर्ह+ विडम्बः, समाह्+ वयति

तर्हि भग्नगतयः(स्) सरितो वै,

तत्पदाम्बुजरजोऽनिलनीतम् ।

स्पृहयतीर्वयमिवाबहुपुण्याः(फ्),

प्रेमवेपितभुजाः(स्) स्तिमितापः ॥ 6॥

भग्न+ गतयः(स्), तत्पदाम्+ बुजरजोऽ+ निलनीतम्

स्पृहयतीर्+ वयमिवा+ बहुपुण्याः(फ्), प्रेम+ वेपित+ भुजाः(स्)

हे सखि! जब वे नन्दके लाड़ले लाल अपने सिर पर मोरपंखका मुकुट बाँध लेते हैं, घुँघराली बालोमें फूलके गुच्छे खोंस लेते हैं, रंगीन धातुओंसे अपना अङ्ग अङ्ग रंग लेते हैं और नये-नये पत्तो से ऐसा वेष सजा लेते हैं, जैसे कोई बहुत बड़ा पहलवान हो और फिर बलरामजी तथा ग्वालवालोंके साथ बाँसुरीमें गौओंका नाम ले-लेकर उन्हें पुकारते हैं; उस समय प्यारी सखियो! नदियोंकी गति भी रुक जाती है। वे चाहती तो हैं कि वायु उड़ाकर हमारे प्रियतमके चरणोंकी धूलि हमारे पास पहुँचा दे और उसे पाकर हम निहाल हो जायें, परन्तु सखियो ! वे भी हमारे ही जैसी मन्दभागिनी है। जैसे नन्दनन्दन श्रीकृष्णका आलिङ्गन करते समय हमारी भुजाएँ काँप जाती और जड़तारूप का उदय हो जानेसे हम अपने हाथोंको हिला भी नहीं पातीं, वैसे ही वे नदीयाँ भी प्रेमके कारण काँपने लगती हैं। दो-चार बार अपनी तरङ्गरूप भुजाओंको काँपते- काँपते उठाती तो अवश्य हैं, परन्तु फिर विवश होकर स्थिर हो जाती हैं, प्रेमावेशसे स्तम्भित हो जाती हैं

अनुचरैः(स्) समनुवर्णितवीर्य,

आदिपूरुष इवाचलभूतिः ।

वनचरो गिरितटेषु चरन्तीर्-

वेणुनाऽऽह्वयति गाः(स्) स यदा हि ॥ 7॥

सम+ नुवर्णि+ तवीर्य ,इवा+ चलभूतिः, वेणुनाऽऽह्+ वयति

वनलतास्तरव आत्मनि विष्णुं(वँ),

व्यं(ञ्)जयन्त्य इव पुष्पफलाढ्याः ।

प्रणतभारविटपा मधुधाराः(फ्),

प्रेमहृष्टतनवः(स्) ससृजुः(स्) स्म ॥ 8॥

वनलतास्+ तरव, पुष्प+ फलाढ्याः, प्रणत+ भार+ विटपा ,प्रेम+ हृष्ट+ तनवः(स्)

जैसे देवता लोग अनन्त और अचिन्त्य ऐश्वर्यों के स्वामी भगवान नारायणकी शक्तियोंका गान करते हैं, वैसे ही ये ग्वालबाल अनन्तसुन्दर नटनागर श्रीकृष्णकी लीलाओंका गान करते रहते हैं। वे अचिन्त्य ऐश्वर्य सम्पन्न श्रीकृष्ण जब वृन्दावनमें विहार करते रहते हैं और वेणु बजाकर गिरिराज गोवर्धनकी तराईमें चरती हुई गौओको नाम ले-लेकर पुकारते हैं, उस समय वनके वृक्ष और लताएँ फूल और फलोंसे लद जाती हैं, उनके भारसे डालियाँ झुककर धरती छूने लगती हैं, मानो प्रणाम कर रही हो, वे वृक्ष और लताएँ अपने भीतर भगवान विष्णुको अभिव्यक्ति सूचित करती हुई-सी प्रेमसे खील उठती है, उनका रोम-रोम खिल जाता है और सब की सब मधुधाराएँ उढेलने लगती हैं

दर्शनीयतिलको वनमाला-
दिव्यगन्धतुलसीमधुमत्तैः ।
अलिकुलैरलघुगीतमभीष्ट-
माद्रियन् यर्हि सन्धितवेणुः ॥ 9॥

दर्शनी+ यतिलको , दिव्यगन्ध+ तुलसी+ मधुमत्तैः,
अलिकुलै+ रलघुगी+ तमभीष्ट ,सन्धि+ तवेणुः

सरसि सारसहं(म्)सविहङ्गाश्-
चारुगीतहृतचेतस एत्य ।
हरिमुपासत ते यतचित्ता,
हन्त मीलितदृशो धृतमौनाः ॥ 10॥

सारस+ हं(म्)स+ विहङ्गाश्, चारु+ गीतहृत+ चेतस ,हरि+ मुपासत, मीलि+ तदृशो

अरी सखी! जितनी भी वस्तुएँ संसारमें या उसके बाहर देखने योग्य हैं, उनमें सबसे सुन्दर, सबसे मधुर, सबके शिरोमणि हैं-ये हमारे मनमोहन। उनके साँवले ललाटपर केसरकी खौर कितनी फबती है–बस, देखती ही जाओ। गलेमें घुटनोंतक लटकती हुई वनमाला, उसमें पिरोयी हुई तुलसीकी दिव्य गन्ध और मधुर मधुसे मतवाले होकर झुंड-के झुंड भौरें बड़े मनोहर एवं उच्च स्वरसे गुंजार करते रहते हैं। हमारे नटनागर श्यामसुन्दर भौरोंकी उस गुनगुनाहटका आदर करते हैं और उन्होंके स्वरमें स्वर मिलाकर अपनी बाँसुरी फूँकने लगते हैं। उस समय सखि ! उस मुनिजन मोहन संगीतको सुनकर सरोवरमें रहनेवाले सारस-हंस आदि पक्षियोंका भी चित्त उनके हाथसे निकल जाता है, छिन जाता है। वे विवश होकर प्यारे श्यामसुन्दरके पास आ बैठते हैं तथा आँखें मूँद, चुपचाप, चित्त को एकाग्र करके उनकी आराधना करने लगते हैं–मानो कोई विहङ्गमवृत्तिके रसिक परमहंस ही हों, भला कहो तो यह कितने आश्चर्यकी बात है !

सहबलः(स्) स्रगवतं(म्)सविलासः(स्),
सानुषु क्षितिभृतो व्रजदेव्यः ।
हर्षयन् यर्हि वेणुरवेण,
जातहर्ष उपरम्भति विश्वम् ॥ 11॥

स्रगवतं(म्)+ सविलासः(स्),क्षिति+ भृतो, वेणु+ रवेण

महदतिक्रमणशं(ङ्)कितचेता,

मन्दमन्दमनुगर्जति मेघः ।

सुहृदमभ्यवर्षत् सुमनोभिश्-

छायया च विदधत् प्रतपत्रम् ॥ 12॥

महदति+ क्रमणशं(ङ्)+ कितचेता, मन्द+ मन्द+ मनुगर्जति, सुहृदमभ्+ यवर्षत्

अरी व्रजदेवियो ! हमारे श्यामसुन्दर जब पुष्पोंके कुण्डल बनाकर अपने कानोंमें धारण कर लेते हैं और बलरामजीके साथ गिरिराजके शिखरोंपर खड़े होकर सारे जगतको हर्षित करते हुए बाँसुरी बजाने लगते हैं–बाँसुरी क्या बजाते हैं, आनन्दमें भरकर उसकी ध्वनिके द्वारा सारे विश्वका आलिङ्गन करने लगते हैं–उस समय श्याम बादल बाँसुरीकी तानके साथ मन्द मन्द गरजने लगता है। उसके चित्तमें इस बातकी शङ्का बनी रहती है कि कहीं मैं जोरसे गर्जना कर उठूं और वह कहीं बाँसुरीकी तानके विपरीत पड़ जाय, उसमें बेसुरापन ले आये, तो मुझसे श्रीकृष्णका अपराध हो जायगा। सखी! वह इतना ही नहीं करता; वह जब देखता है कि हमारे सखा घनश्यामको घाम लग रहा है, तब वह उनके ऊपर आकर छाया कर लेता है, उनका छत्र बन जाता है। वह तो प्रसन्न होकर बड़े प्रेमसे उनके ऊपर अपना जीवन ही न्यौछावर कर देता है–नन्हीं-नन्हीं फुहियोंके रूपमें ऐसा बरसने लगता है, मानो दिव्य पुष्पोंकी वर्षा कर रहा हो। कभी-कभी बादलोंकी ओटमें छिपकर देवतालोग भी पुष्पवर्षा कर जाया करते हैं

विविधगोपचरणेषु विदग्धो,

वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षाः ।

तव सुतः(स्) सति यदाधरबिम्बे,

दत्तवेणुरनयत् स्वरजातीः ॥ 13॥

विविध+ गोप+ चरणेषु ,यदा+ धरबिम्बे ,दत्तवेणु+ रनयत्

सवनशस्तदुपधार्य सुरेशाः(श्),

शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः ।

कवय आनतकन्धरचित्ताः(ख्),

कश्मलं(यँ) ययुरनिश्चिततत्त्वाः ॥ 14॥

सवनशस्+ तदु+ पधार्य , शक्रशर्व+ परमेष्ठि+ पुरोगाः,

आनत+ कन्ध+ रचित्ताः(ख्),ययु+ रनिश्चित+ तत्त्वाः

हे सतीशिरोमणि यशोदाजी! तुम्हारे सुन्दर कुँवर ग्वालबालोंके साथ खेल खेलने में बड़े निपुण हैं। हे रानीजी ! तुम्हारे लाड़ले लाल सबके प्यारे तो हैं ही, चतुर भी बहुत हैं। देखो, उन्होंने बाँसुरी बजाना किसीसे सीखा नहीं। अपने आप ही अनेकों प्रकारकी राग-रागिनियाँ उन्होंने निकाल लीं। जब वे अपने

बिम्बा फल सदृश लाल-लाल अधरों पर बाँसुरी रखकर ऋषभ, निषाद आदि स्वरोंकी अनेक जातियाँ बजाने लगते हैं, उस समय वंशीकी परम मोहिनी और नयी तान सुनकर ब्रह्मा, शङ्कर और इन्द्र आदि बड़े-बड़े देवता भी जो सर्वज्ञ है वेभी उसे नहीं पहचान पाते। वे इतने मोहित हो जाते हैं कि उनका चित्त तो उनके रोकने पर भी उनके हाथसे निकलकर वंशीध्वनिमे तल्लीन हो ही जाता है, उनका सिर भी झुक जाता है,और वे अपनी सुध-बुध खोकर उसीमें तन्मय हो जाते हैं

निजपदाब्जदलैर्ध्वजवज्र-

नीरजां(ङ्)कुशविचित्रललामैः ।

व्रजभुवः(श्) शमयन् खुरतोदं(वँ्),

वर्ष्मधुर्यगतिरीडितवेणुः ॥ 15॥

निजपदाब्+ जदलैर्+ ध्वज+ वज्र ,

नीरजां(ङ्)+ कुशविचित्र+ ललामैः, वर्ष्म+ धुर्यगति+ रीडित+ वेणुः

व्रजति तेन वयं(म्) सविलास,

वीक्षणार्पितमनोभववेगाः ।

कुजगतिं(ङ्) गमिता न विदामः(ख्),

कँश्मलेन कबरं(वँ्) वसनं(वँ्) वा ॥ 16॥

वीक्षणार्+ पितमनो+ भववेगाः

उनके चरणकमलोमे ध्वजा,वज्र, कमल,अङ्कुश आदिके विचित्र और सुन्दर-सुन्दर चिह्न है। जब व्रजभूमि गौओंके खुरसे खुद जाती है, तब वे अपने सुकुमार चरणोंसे उसकी पीड़ा मिटाते हुए गजराजके समान मन्दगतिसे आते हैं और बाँसुरी भी बजाते रहते हैं। उनकी वह वंशीध्वनि, उनकी वह चाल और उनकी वह विलासभरी चितवन हमारे हृदयमें प्रेमके, मिलनकी आकांक्षा का आवेग बढ़ा देती है। हम उस समय इतनी मुग्ध, इतनी मोहित हो जाती हैं कि हिल डोलतक नहीं सकतीं, मानो हम जड़ वृक्ष हो। हमें तो इस बातका भी पता नहीं चलता कि हमारा जूड़ा खुल गया है या बँधा है, हमारे शरीरपर वस्त्र उतर गया है या है

मणिधरः(ख्) क्वचिदागणयन् गा,

मालया दयितगन्धतुलस्याः ।

प्रणयिनोऽनुचरस्य कदां(म्)से,

प्रक्षिपन् भुजमगायत यत्र ॥ 17॥

क्वचिदा+ गणयन्, दयित+ गन्ध+ तुलस्याः, प्रणयिनोऽ+ नुचरस्य

क्वणितवेणुरववं(ञ्)चितचित्ताः(ख्),

कृष्णमन्वसत कृष्णगृहिण्यः ।

गुणगणार्णमनुगत्य हरिण्यो,

गोपिका इव विमुक्तगृहाशाः ॥ 18॥

क्वणित+ वेणु+ रववं(ञ्)+ चितचित्ताः(ख्), कृष्ण+ मन्+ वसत,

गुणगणार्+ णमनुगत्य, विमुक्त+ गृहाशाः

अरी सखी ! श्रीकृष्ण के गलेमें मणियोंकी माला बहुत ही भली मालूम होती है। तुलसीकी मधुर गन्ध उन्हें बहुत प्यारी है। इसीसे तुलसीकी मालाको तो वे कभी छोड़ते ही नहीं, सदा धारण किये रहते हैं। जब वे श्यामसुन्दर उस मणियोंकी मालासे गौओंकी गिनती करते-करते किसी प्रेमी सखाके गलेमें बाँह डाल देते हैं और भाव बता-बताकर बाँसुरी बजाते हुए गाने लगते हैं, उस समय बजती हुई उस बाँसुरीके मधुर स्वरसे मोहित होकर कृष्णसार मृगो की पत्नी हरिनियाँ भी अपना चित्त उनके चरणोंपर निछावर कर देती हैं और जैसे हम गोपियाँ अपने घर गृहस्थीकी आशा-अभिलाषा छोड़कर गुणसागर नागर नन्द नन्दनको घेरे रहती हैं, वैसे ही वे भी उनके पास दौड़ आती हैं और वहीं एकटक देखती हुई खड़ी रह जाती है, घर लौटने का नाम भी नहीं लेतीं ।।

कुन्ददामकृतकौतुकवेषो,

गोपगोधनवृतो यमुनायाम् ।

नन्दसूनुरनघे तव वत्सो,

नर्मदः(फ्) प्रणयिनां(वँ) विजहार ॥ 19॥

कुन्ददा+ मकृत+ कौतुकवेषो, गोप+ गोध+ नवृतो ,नन्दसू+ नुरनघे

मन्दवायुरुपवात्यनुकूलं(म्),

मानयन् मलयजस्पर्शेन ।

वन्दिनस्तमुपदेवगणा ये,

वाद्यगीतबलिभिः(फ्) परिवव्रुः ॥ 20॥

मन्द+ वायुरुप+ वात्य+ नुकूलं(म्),मलय+ जस्पर्शेन ,

वन्दिनस्+ तमुप+ देवगणा, वाद्य+ गीत+ बलिभिः(फ्)

हे नन्दरानी यशोदाजी ! वास्तवमें तुम बड़ी पुण्यवती हो। तभी तो तुम्हें ऐसे पुत्र मिले हैं। तुम्हारे वे लाडले लाल बड़े प्रेमी हैं, उनका चित्त बड़ा कोमल है। वे प्रेमी सखाओंको तरह तरहसे हास-परिहासके द्वारा सुख पहुँचाते हैं। कुन्दकलीका हार पहनकर जब वे अपनेको विचित्र वेषमें सजा लेते हैं और ग्वालबाल तथा गौओंके साथ यमुनाजीके तटपर खेलने लगते हैं, उस समय मलयज चन्दनके समान शीतल और सुगन्धित स्पर्शसे मन्द मन्द अनुकूल बहकर वायु तुम्हारे लालकी सेवा करती है और गन्धर्व आदि उपदेवता वंदीजनोंके समान गा-बजाकर उन्हें सन्तुष्ट करते हैं तथा अनेकों प्रकारकी भेंटे देते हुए सब ओरसे घेरकर उनकी सेवा करते हैं

वत्सलो व्रजगवां(यँ) यदगाध्रो,

वन्द्यमानचरणः(फ्) पथि वृद्धैः ।
कृत्स्नगोधनमुपोह्य दिनान्ते,
गीतवेणुरनुगेडितकीर्तिः ॥ 21॥

वन्द्यमा+ नचरणः(फ्),कृत्स्न+ गोध+ नमुपोह्य ,गीत+ वेणुरनु+ गेडित+ कीर्तिः

उत्सवं(म्) श्रमरुचापि दृशीना-
मुन्नयन् खुररजश्छुरितस्रक्।
दित्सयैति सुहृदाशिष एष,
देवकीजठरभूरुडुराजः॥ 22॥

खुर+ रजश्+ छुरित+ स्रक्, देवकी+ जठरभू+ रुडुराजः

अरी सखी! श्यामसुन्दर व्रजकी गौओसे बड़ा प्रेम करते हैं। इसीलिये तो उन्होंने गोवर्धन धारण किया था। अब वे सब गौओंको लौटाकर आते ही होंगे; देखो, सायङ्काल हो चला है। तब इतनी देर क्यों होती है, सखी ? रास्तेमें बड़े-बड़े ब्रह्मा आदि वयोवृद्ध और शङ्कर आदि ज्ञानवृद्ध उनके चरणोंकी वन्दना जो करने लगते हैं। अब गौओंके पीछे-पीछे बाँसुरी बजाते हुए वे आते ही होंगे। ग्वालबाल उनकी कीर्तिका गान कर रहे होंगे। देखो न, यह क्या आ रहे हैं। गौओंके खुरोंसे उड़-उड़कर बहुत-सी धूल वनमाला पर पड़ गयी है। वे दिनभर जंगलोंमें घूमते-घूमते थक गये हैं। फिर भी अपनी इस शोभासे हमारी आँखोंको कितना सुख, कितना आनन्द दे रहे हैं। देखो, ये यशोदाकी कोखसे प्रकट हुए सबको आह्लादित करने वाले चन्द्रमा हम प्रेमीजनोंकी भलाई के लिये, हमारी आशा-अभिलाषाओंको पूर्ण करनेके लिये ही हमारे पास चले आ रहे हैं

मदविघूर्णितलोचन ईषन्,
मानदः(स्) स्वसुहृदां(वँ) वनमाली ।
बदरपाण्डुवदनो मृदुगण्डं(म्),
मण्डयन् कनककुण्डललक्ष्म्या ॥ 23॥

मदविघूर्+ णित+ लोचन ,बदर+ पाण्डु+ वदनो, कनक+ कुण्डल+ लक्ष्म्या

यदुपतिर्द्विरदराजविहारो,
यामिनीपतिरिवैष दिनान्ते ।
मुदितवक्त्र उपयाति दुरन्तं(म्),
मोचयन् व्रजगवां(न्) दिनतापम् ॥ 24॥

यदुपतिर्+ द्विर+ दराज+ विहारो, यामिनी+ पति+ रिवैष, मुदि+ तवक्त्र

हे सखी! देखो कैसा सौन्दर्य है ! मदभरी आँखें कुछ चढ़ी हुई हैं। कुछ-कुछ ललाई लिये हुए कैसी भली जान पड़ती हैं। गलेमें वनमाला लहरा रही है। सोनेके कुण्डलोंकी कान्तिसे वे अपने कोमल कपोलोंको अलङ्कृत कर रहे हैं। इसीसे मुँहपर अधपके बेरके समान कुछ पीलापन जान पड़ता है और रोम-रोमसे विशेष करके मुखकमलसे प्रसन्नता फूटी पड़ती है। देखो,अब वे अपने सखा ग्वालबालोंका सम्मान करके उन्हें विदा कर रहे हैं। देखो सखी! व्रजविभूषण श्रीकृष्ण गजराजके समान मदभरी चालसे इस सन्ध्या वेलामें हमारी ओर आ रहे हैं। अब व्रजमें रहनेवाली गौओंका, हमलोगोंका दिनभर का असह्य विरह-ताप मिटानेके लिये उदित होनेवाले चन्द्रमाकी भाँति ये हमारे प्यारे श्यामसुन्दर समीप चले आ रहे हैं

भ्रमरगीत(10.47)

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कन्धः

॥ अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥

गोप्युवाच

मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाङ्घ्रिं(म्) सपत्न्याः(ख्)

कुचविलुलितमालाकुङ्कुमश्मश्रुभिर्नः ।

वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां(म्) प्रसादं(यँ)

यदुसदसि विडम्ब्यं(यँ) यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥ 1॥

कुचविलुलित+माला+कुङ्कुमश्+मश्रुभिर्नः, मधुपतिस्तन्+मानिनीनां(म्), दूतस्+त्वमी+दृक्

गोपीने कहा- रे मधुप तू कपटी का सखा है; ! इसलिये तू भी कपटी है। तू हमारे पैरों को मत छू। झूठे प्रणाम करके हमसे अनुनय-विनय मत कर। हम देख रही हैं कि श्रीकृष्ण की जो वनमाला हमारी सौतों के वक्षःस्थल के स्पर्श से मसली हुई है, उसका पीला-पीला कुङ्कुम तेरी मूछों पर भी लगा हुआ है। तू स्वयं भी तो किसी कुसुम से प्रेम नहीं करता, यहाँ से वहाँ उड़ा करता है। जैसे तेरे स्वामी, वैसा ही तू! मधुपति श्रीकृष्ण मथुरा की मानिनी नायिकाओं को मनाया करें, उनका वह कुंकुमरूप कृपा-प्रसाद, जो युदशियों की सभा में उपहास करनेयोग्य है, अपने ही पास रखें। उसे तेरे द्वारा यहाँ भेजनेकी क्या आवश्यकता है ?

सकृदधरसुधां(म्) स्वां(म्) मोहिनीं(म्) पाययित्वा

सुमनस इव सद्यस्तत्यजेऽस्मान् भवादृक् ।

परिचरति कथं(न्) तत्पादपद्मं(न्) तु पद्मा

ह्यपि बत हृतचेता उत्तमश्लोकजल्पैः ॥ 2॥

सकृद+धरसुधां(म्), सद्यस्+तत्+यजेऽस्+मान् , तत्पा+दपद्मं(न्), उत्तमश्+लो+कजल्पैः

जैसा तू काला है, वैसे ही वे भी हैं। तू भी पुष्पों का रस लेकर उड़ जाता है, वैसे ही वे भी निकले। उन्होंने हमें केवल एक बार-हाँ, ऐसा ही लगता है—केवल एक बार अपनी तनिक सी मोहिनी और परम मादक अधरसुधा पिलायी थी और फिर हम भोली-भाली गोपियों को छोड़कर वे यहाँ से चले गये। पता नहीं; सुकुमारी लक्ष्मी उनके चरणकमलों की सेवा कैसे करती रहती हैं। अवश्य ही वे छैल-छबीले श्रीकृष्णको चिकनी-चुपड़ी बातों में आ गयी होंगी। चितचोरने उनका भी चित्त चुरा लिया होगा।

किमिह बहु षडङ्घ्रे गायसि त्वं(यँ) यदूना-

मधिपतिमगृहाणामग्रतो नः(फ्) पुराणम् ।

विजयसखसखीनां(ङ्) गीयतां(न्) तत्प्रसं(ङ्)गः

क्षपितकुचरुजस्ते कल्पयन्तीष्टमिष्टाः ॥ 3॥

मधिपति+मगृहाणा+मग्रतो, विजय+सख+सखीनां(ङ्),

तत्+प्रसं(ङ्)गः, क्षपित+कुच+रुजस्ते, कल्पयन्+तीष्टमिष्टाः

अरे भ्रमर! हम वनवासिनी हैं। हमारे तो घर-द्वार भी नहीं है। तू हमलोगों के सामने यदुवंशशिरोमणि श्रीकृष्ण का बहुत-सा गुणगान क्यों कर रहा है ? यह सब भला हमलोगों को मनाने के लिये ही तो ? परन्तु नहीं-नहीं, वे हमारे लिये कोई नये नहीं हैं। हमारे लिये तो जाने-पहचाने, बिल्कुल पुराने हैं। तेरी चापलूसी हमारे पास नहीं चलेगी। तू जा, यहाँ से चला जा और जिनके साथ सदा विजय रहती है, उन श्रीकृष्ण की मधुपुरवासिनी सखियों के सामने जाकर उनका गुणगान कर वे नयी हैं, उनकी लीलाएँ कम जानती है और इस समय वे उनकी प्यारी हैं, उनके हृदय की पीड़ा उन्होंने मिटा दी है। वे तेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगी, तेरी चापलूसी से प्रसन्न होकर तुझे मुँहमांगी वस्तु देंगी।

दिवि भुवि च रसायां(ङ्) काः(स्) स्त्रियस्तद्दुरापाः(ख्)

कपटरुचिरहासभ्रूविजृम्भस्य याः(स्) स्युः ।

चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयं(ङ्) का

अपि च कृपणपक्षे ह्युत्तमश्लोकशब्दः ॥ 4॥

स्त्रियस्+तद्दुरापाः(ख्), कपट+रुचिरहा+सभ्रूविजृम्+भस्य, ह्युत्तमश्+लो+कशब्दः

भौंरे ! वे हमारे लिये छटपटा रहे हैं, ऐसा तू क्यों कहता है ? उनकी कपटभरी मनोहर मुसकान और भौहों के इशारे से जो वश में न हो जायें, उनके पास दौड़ी न आवें-ऐसी कौन-सी स्त्रियाँ हैं ? अरे अनजान। स्वर्ग में, पाताल में और पृथ्वी में ऐसी एक भी स्त्री नहीं है। औरों की तो बात ही क्या, स्वयं लक्ष्मीजी भी उनके चरणरज की सेवा किया करती है। फिर हम श्रीकृष्ण के लिये किस गिनती में हैं ? परन्तु तू उनके पास जाकर कहना कि 'तुम्हारा नाम तो 'उत्तमश्लोक' है, अच्छे-अच्छे लोग तुम्हारी कीर्ति का गान करते हैं; परन्तु इसकी सार्थकता तो इसी में है कि तुम दोनों पर दया करो नहीं तो श्रीकृष्ण तुम्हारा 'उत्तमश्लोक' नाम झूठा पड़ जाता है।

विसृज शिरसि पादं(वँ) वेद्म्यहं(ञ्) चाटुकारै-

रनुनयविदुषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात् ।

स्वकृत इह विसृष्टापत्यपत्यन्यलोका

व्यसृजदकृतचेताः(ख्) किं(न्) नु सन्धेयमस्मिन् ॥ 5॥

रनुनय+विदुषस्+तेऽभ्येत्य, दौत्यैर्+मुकुन्+दात् ,

विसृष्टा+पत्य+पत्यन्+यलोका, व्यसृजद+कृतचेताः(ख्), सन्धे+यमस्+मिन्

अरे मधुकर देख! तू मेरे पैर पर सिर मत टेक मैं जानती हूँ कि तू अनुनय-विनय करने में, क्षमा-याचना करने में बड़ा निपुण है। मालूम होता है तू श्रीकृष्ण से ही यही सीखकर आया है कि रूठे हुए को मनाने के लिये द्रूत को- सन्देश- वाहक को कितनी चाटुकारिता करनी चाहिये। परन्तु तू समझ ले कि यहाँ तेरी दाल नहीं गलने की। देख, हमने श्रीकृष्ण के लिये ही अपने पति पुत्र और दूसरे लोगों को छोड़ दिया। परन्तु उनमें तनिक भी कृतज्ञता नहीं। वे ऐसे निर्मोही निकले कि हमें छोड़कर चलते बने। अब तू ही बता, ऐसे अकृतज्ञ के साथ हम क्या सन्धि करें ? क्या तू अब भी कहता है कि उनपर विश्वास करना चाहिये?

मृगयुरिव कपीन्द्रं(वँ) विव्यधे लुब्धधर्मा,

स्त्रियमकृत विरूपां(म्) स्त्रीजितः(ख्) कामयानाम् ।

बलिमपि बलिमत्त्वावेष्टयद् ध्वां(ङ्)क्षवद् यस्-

तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथार्थः ॥ 6॥

लुब्ध+धर्मा, स्त्रिय+मकृत, बलिमत्+त्वा+वेष्टयद् ,

तदल+मसित+सख्यैर्+दुस्+त्यजस्+तत्कथार्थः

ऐ रे मधुप ! जब वे राम बने थे, तब उन्होंने कपिराज बालि को व्याध के समान छिपकर बड़ी निर्दयता से मारा था। बेचारी शूर्पणखा कामवश उनके पास आयी थी, परन्तु उन्होंने अपनी स्त्री के वश होकर उस बेचारी के नाक-कान काट लिये और इस प्रकार उसे कुरूप कर दिया। ब्राह्मण के घर वामन के रूप में जन्म लेकर उन्होंने क्या किया ? बलि ने तो उनकी पूजा की, उनकी मुँहमाँगी वस्तु दी और उन्होंने उसकी पूजा ग्रहण करके भी उसे वरुणपाश से बांधकर पाताल में डाल दिया। ठीक वैसे ही, जैसे कौआ बलि खाकर भी बलि देनेवाले को अपने अन्य साथियों के साथ मिलकर घेर लेता है और परेशान करता है। अच्छा, तो अब जाने दे; हमें श्रीकृष्ण से क्या, किसी भी काली वस्तु के साथ मित्रता से कोई प्रयोजन नहीं है। परन्तु यदि तू यह कहे कि 'जब ऐसा है तब तुमलोग उनकी चर्चा क्यों करती हो ?' तो भ्रमर ! हम सच कहती हैं, एक बार जिसे उसका चसका लग जाता है, वह उसे छोड़ नहीं सकता। ऐसी दशा में हम चाहनेपर भी उनकी चर्चा छोड़ नहीं सकतीं।

यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्-

सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः ।

सपदि गृहकुटुम्बं(न्) दीनमुत्सृज्य दीना

बहव इह विहं(ङ्)गा भिक्षुचर्यां(ञ्) चरन्ति ॥ 7॥

यदनु+चरित+लीला+कर्णपीयू+षविप्रुट् सकृद+दनविधू+तद्वन्द्व (तद्+वन्+द्व)+धर्मा, दीनमुत्+सृज्य

श्रीकृष्ण की लीलारूप कर्णामृत के एक कण का भी जो रसास्वादन कर लेता है, उसके राग-द्वेष, सुख-दुःख आदि सारे द्वन्द्व छूट जाते हैं। यहाँ तक कि बहुत से लोग तो अपनी दुःखमय- दुःख से सनी हुई घर-गृहस्थी छोड़कर अकिञ्चन हो जाते हैं, अपने पास कुछ भी संग्रह परिग्रह नहीं रखते और पक्षियों की तरह चुन चुनकर भीख माँगकर अपना पेट भरते हैं, दीन-दुनिया से जाते रहते हैं। फिर भी श्रीकृष्ण की छोड़ नहीं पाते। वास्तव में उसका रस, उसका चसका ऐसा ही है। यही दशा हमारी हो रही है।

वयमृतमिव जिह्मव्याहृतं(म्) श्रद्दधानाः(ख्)

कुलिकरुतमिवाज्ञाः(ख्) कृष्णवध्वो हरिण्यः ।

दद्दशुरसकृदेतत्तन्नखस्पर्शतीव्र-

स्मररुज उपमन्त्रिन् भण्यतामन्यवार्ता ॥ 8॥

जिह्+मव्या+हृतं(म्), कुलिक+रुतमि+वाज्ञाः(ख्), कृष्ण+ वध्वो,

दद्दशुर+ सकृदे+ तत्तन्+ नखस् + पर्शतीव्र, उपमन्+ त्रिन् , भण्यता+ मन्यवार्ता

जैसे कृष्णसार मृग की पत्नी भोली-भाली हरिनियाँ व्याध के सुमधुर गान का विश्वास कर लेती हैं और उसके जाल में फँसकर मारी जाती है, वैसे ही हम भोली-भाली गोपियाँ भी उस लिया कृष्ण की कपट भरी मीठी-मीठी बातों में आकर उन्हें सत्य के समान मान बैठीं और उनके नखस्पर्श से होनेवाली कामव्याधि का बार-बार अनुभव करती रहीं। इसलिये श्रीकृष्ण के दूत भौंरे ! अब इस विषय में तू और कुछ मत कह। तुझे कहना ही हो तो कोई दूसरी बात कहो।

प्रियसख पुनरागाः(फ्) प्रेयसा प्रेषितः(ख्) किं(ङ्)

वरय किमनुरुन्धे माननीयोऽसि मेऽङ्ग ।

नयसि कथमिहास्मान् दुस्त्यजद्वन्द्वपार्श्वं(म्)

सततमुरसि सौम्य श्रीर्वधूः(स्) साकमास्ते ॥ 9॥

किमनु+रुन्धे, माननी+योऽसि, कथमिहास्+मान्, दुस्त्यज+द्वन्द्वपार्श्वं(म्)

हमारे प्रियतम के प्यारे सखा ! जान पड़ता है तुम एक बार उधर जाकर फिर लौट आये हो। अवश्य ही हमारे प्रियतम ने मनाने के लिये तुम्हें भेजा होगा। प्रिय भ्रमर ! तुम सब प्रकार से हमारे माननीय हो। कहो, तुम्हारी क्या इच्छा है ? हमसे जो चाहो सो माँग लो। अच्छा, तुम सच बताओ, क्या हमें वहाँ ले चलना चाहते हो ? अजी, उनके पास जाकर लौटना बड़ा कठिन है। हम तो उनके पास जा चुकी हैं। परन्तु तुम हमें वहाँ ले जाकर करोगे क्या ? प्यारे भ्रमर ! उनके साथ- उनके वक्षःस्थल पर तो उनकी प्यारी पत्नी लक्ष्मीजी सदा रहती हैं न ? तब वहाँ हमारा निर्वाह कैसे होगा।

अपि बत मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनाऽऽस्ते

स्मरति स पितृगेहान् सौम्य बन्धूं(म्)श्च गोपान् ।

क्वचिदपि स कथा नः(ख्) किं(ङ्)करीणां(ङ्) गृणीते

भुजमगुरुसुगन्धं(म्) मूर्ध्न्यधास्यत् कदा नु ॥ 10॥

मधुपुर्या+मार्यपुत्रोऽ+धुनाऽऽस्ते, भुजम+गुरुसु+गन्धं(म्), मूर्ध्यधा+स्यत्

अच्छा, हमारे प्रियतम के प्यारे दूत मधुकर! हमें यह बतलाओ कि आर्यपुत्र भगवान श्रीकृष्ण गुरुकुल से लौटकर मधुपुरी में अब सुख से तो हैं न ? क्या वे कभी नन्दबाबा, यशोदारानी, यहाँ के घर, सगे-सम्बन्धी और ग्वालबालों को भी याद करते हैं ? और क्या हम दासियों की भी कोई बात कभी चलाते हैं? प्यारे भ्रमर हमें यह भी बतलाओ कि कभी वे अपनी अगर के समान दिव्य सुगन्ध से युक्त भुजा हमारे सिरों पर रखेंगे ? क्या हमारे जीवन में कभी ऐसा शुभ अवसर भी आयेगा?

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

ॐ शांतिः(श्) शांतिः(श्) शांतिः।।

वह सच्चिदानंदघन परब्रह्म सभी प्रकार से सदा सर्वदा परिपूर्ण है। यह जगत भी उस परमात्मा से पूर्ण ही है, क्योंकि यह पूर्ण उस पूर्ण पुरुषोत्तम से ही उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार परब्रह्म की पूर्णता से जगत पूर्ण होने पर भी वह परब्रह्म परिपूर्ण है। उस पूर्ण में से पूर्ण को निकाल देने पर भी वह पूर्ण ही शेष रहता है।